# हुसैनी किरदार का एक वरक़

## प्रोफ़ेसर अल्लामा सै0 अली मुहम्मद नक़वी साहिब क़िब्ला, अलीगढ़

तारीख़ पर निगाह रखने वाला हर इन्सान इस बात को अच्छी तरह जानता है कि बचपन से इमाम हुसैन[अ0] की तक़रीबन पूरी ज़िन्दगी एक मुसलसल परेशानी व कशमकश का मजमुआ रही।

हुसैन[अ0] का बचपन ही था जब शफीक़ नाना, रसूले इस्लाम मुहम्मद मुस्तफा[स0] का इन्तेक़ाल हो गया। रसूल[स0] की आँख बन्द होना थी कि दुनिया ही बदल गई। अहलेबैत का घर दुनिया की परेशानियों और बलाओं का गहवारा बन गया। वह लोग हाकिम बन गए जिनका मक़सद ही अहलेबैते[अ0] को अज़ियतें देना था।

अब कभी अली[अ0] व फातिमा (स0) के घर के गिर्द लकड़ियाँ जमा की जाती हैं कभी अली[अ0] के गले में रस्सी डाली जाती है। इन तमाम मुसीबतों में अपने बाप, माँ और भाई बहनों के साथ–साथ हुसैन इब्ने अली[अ0] भी बराबर के शरीक रहे।

पच्चीस साल के लम्बे अर्से और क़त्ले उसमान के बाद अहलेबैत को इत्मिनान और सुकून की सांस लेने का मौक़ा मिल सकता था जबकि अमीरुलमोमिनीन अली इब्ने अबी तालिब[अ0] को मुसलमानों ने अपना सरबराह चुन लिया। मगर जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान के फितनों ने उस दौर में भी इत्मिनान नसीब न होने दिया और आख़िरकार इब्ने मुल्जिम की ज़रबत से अमीरुलमोमिनीन हज़रत अली[अ0] शहीद हो गए। अब मुसलमानों ने इमाम हसन[अ0] को ख़लीफ़ा मुक़र्रर किया। मगर जल्द ही अमीरे शाम मुआविया ने ख़लीफतुल मुस्लिमीन पर चढ़ाई कर दी। इमाम हसन[अ0] ने मुसलमानों के फ़ायदे को पेशे नज़र रखते हुए अमीरे शाम से सुल्ह कर ली।

अब अहलेबैत[अ0] के ख़िलाफ आँधियाँ शिद्दत से चलने लगीं। मस्जिदों में मिम्बरों पर अली[अ0] व हसन[अ0] पर दुश्नाम तराज़ी (बुरा भला कहना) आम हो गई। अमीरुलमोमिनीन के शैदाइयों को क़ैदख़ानों में डाल दिया गया। अहलेबैत[अ0] का नाम लेना जुर्म क़रार दिया गया।

यक़ीनन यह दौर इमाम हुसैन[अ0] के लिए बहुत सख़्त होगा। मगर अभी सर पर एक सरपरस्त था। इमाम हसन[अ0] जैसे भाई ज़िन्दा थे। ग़मो अलम में हुसैन[अ0] का एक शरीक मौजूद था। ख़ानादान का एक बुज़ुर्ग बाक़ी था। ज़िम्मेदारियाँ अभी हसन[अ0] पर थीं, हुसैन[अ0] पर नहीं। अभी अली[अ0] के चाहने वालों के लिए ''दस्तूरे अमल'' मुतरत्तब करने का फर्ज़ हसन के कांधे पर था, हुसैन[अ0] पर नहीं मगर 50 हि0 में इमाम हसन[अ0] की शहादत के बाद से हुसैन[अ0] इब्ने अली[अ0] की ज़िन्दगी का इन्तिहाई सख़्त दौर शुरु हो गया, जो दस साल तक लगातार क़ायम रहा। इस ''सब्र शिकन'' ज़माने में अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास हर हर लम्हा रखना और उससे ग़ाफ़िल न होना सिर्फ हुसैन[अ0] जैसे सैय्यिदुस्साबिरीन ही के बस की बात थी।

इस इम्तिहानी दौर की शुरुआत उस वक़्त से हो गई थी जब इमाम हुसैन[अ0], और

अहलेबैत के चाहने वाले इमाम हसन[अ०] का जनाज़ा लेकर मस्जिदे नबवी में दफ़्न करने की ग़रज़ से जा रहे थे और रास्ते में मरवान और दूसरे लोगों ने आकर जनाज़े पर तीर बरसाने शुरु कर दिये। उस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] की हालत क्या होगी? इसका हर इन्सान अन्दाज़ा लगा सकता है। अभी थोड़ी देर पहले भाई का साया सर पर से उठा है। अचानक न सिर्फ ख़ानदान बल्कि पूरे एक ''फिरक़े'' की रहनुमाई करने की ज़िम्मेदारी सर पर आ गई है। हर तरफ ग़म व गिरयाँ का माहौल है और एक जमाअत की तरफ से भाई के जनाज़े पर तीर आना शुरु हो जाते हैं। उस वक़्त यक़ीनन अस्हाब को जोश आया होगा। शायद मुहम्मद इब्ने हनफिया और अबुल फज़लिल अब्बास ने तलवारें खींच ली हों मगर इमाम[अ०] सबको समझा कर जनाज़े को पलटाकर जन्नतुल बक़ीअ् में दफन कर देते हैं।

अगर हुसैन[अ०] उस वक़्त तलवार खींच लेते तो दुनिया को कहने का मौक़ा मिल जाता कि हुसैन भाई के रवैय्ये से बिल्कुल अलग थे। जैसे ही उनका इन्तेक़ाल हुआ बहाना बनाकर जंग के लिए तैयार हो गए। मगर हुसैन[अ०] को तो साबित करना था कि यह मुम्किन ही नहीं कि हम में जुदाई हो। हम तो ख़ुदा के हुक्म के पाबन्द हैं। जब ख़ुदा का हुक्म सुल्ह करने के लिए होगा हम सुल्ह कर लेंगे। जब उसका हुक्म जिहाद के लिए होगा तलवार खींच लेंगे। जब तक उसका हुक्म रहेगा जंग करेंगे और जब उसका हुक्म होगा सर कटा देंगे।

अगर उस वक़्त हुसैन[अ०] तलवार खींच लेते तो उनकी ''मज़लूमी'' बहस का मुद्दा बन जाती। लोगों को कहने का मौक़ा मिल जाता कि हुसैन[अ०] ने ख़ुद सुलह के मुआहेदे की ख़िलाफवर्ज़ी की। आम लोगों का अमन व सुकून बर्बाद करने की कोशिश की। अब अगर उन्हें शहीद भी कर दिया गया तो एतेराज़ की क्या गुन्जाईश और शाम की हुकूमते के लिए मुआहदे की दूसरी शर्तों को तोड़ने का जवाज़ भी मिल जाता। इसलिए हुसैन[अ०] ने तय कर लिया कि जब तक शाम की हुकूमते मुआहेदे को बिल्कुल न छोड़ देगी मैं उसके ख़िलाफ़ ख़ड़ा न हूँगा।

इस मौक़े के बाद भी उन हाकिमों न जाने क्या–क्या तकलीफें इमाम[अ०] को पहुँचाईं। एक इस्लामी रहनुमा के लिए यही तकलीफ क्या कम है कि ख़ुदा के बनाए और रसूल[स०] के पहुँचाए हुए क़ानून में तबदीलियाँ की जाने लगीं। ''ज़कात फितरा'' की मिक़दार बदल दी गई। ''ख़लीफतुल मुस्लिमीन'' सोने के ज़ेवरात पहनने लगा। दरिन्दे जानवरों की खाल फर्श के तौर पर बिछाई जाने लगी। इस्लाम में हुक्म था कि पैख़ाने क़िब्ला रुख न हों, शाम में तमाम पैख़ाने क़िब्ला की तरफ बनवाए गए, अरफा के दिन तलबिया कहने का हुक्म था, मुआविया ने उस हुक्म को मन्सूख़ (ख़त्म) कर दिया। हज़रत मुहम्मद मुस्तफा[स०] और अली–ए–मुर्तज़ा[अ०] और अब तक तमाम साहाबी भी बिस्मिल्लाह नमाज़ में बुलन्द आवाज़ से कहते थे, मुआविया ने आवाज़ के साथ बिस्मिल्लाह कहने से मना कर दिया। ''दीनी भाईचारगी'' होने की बुनियाद पर अमीरे शाम ने एक शख़्स हत्तात बिन ज़ैद की मीरास पर क़ब्ज़ा कर लिया। हालांकि शरीअते मुहम्मदी में मीरास नसबी वारिस को मिलती है। ग़रज़ इस तरह की न जाने कितनी ''बिदअतें'' राएज हो गईं।

इन तमाम वाक़ेआत की ख़बर इमाम हुसैन[अ०] को भी यक़ीनन पहुँची होगी। इमाम हुसैन[अ०] के लिए तलवार उठाने के वास्ते सिर्फ यही एक वजह काफी थी कि इस्लाम के वजूद

को शामी हुकूमत से ख़तरा था मगर हुसैन[अ०] को तो सब्र व रिज़ा का नमूना क़ायम करना था। उनको तो साबित करना था कि ख़ुदा के चुने हुए रहनुमा न मौक़ा परस्त होते हैं, न जल्दबाज़ बल्कि वह तो वही करते हैं जो उसकी मर्ज़ी हो। चाहे इस सिलसिले में उनको कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़े, कितनी ही तकलीफ़ें उठाना पडें।

बनी उमय्या के हाकिमों ने सिर्फ दीने ख़ुदा में तब्दीली नहीं की बल्कि उसकी हिफाज़त करने वालों को बर्बाद कर दिया। सैकड़ों कुर्आन के हाफिज़ और रसूल[स०] के सहाबी क़त्ल किये गये। इन ही में हजर बिन अदी भी थे जिनकी शहादत से दुनिया–ए–इस्लाम में तहलका मच गया था। अमीरे शाम मुआविया ने हजर को उनके वतन से बुलवाकर मौत के आग़ोश में पहुँचा दिया। उनकी ग़लती क्या थी? बस यह कि वह अली[अ०] और उनकी औलाद का नाम लेने वाले थे। मुसलमानों के चौथे ख़लीफा के मद्दाह थे। यह अमीरे शाम के नज़दीक इतना बड़ा जुर्म था जिसकी सज़ा मौत और बस मौत थी, हजर के क़त्ल पर अहलेबैत[अ०] के मुख़ालिफीन तक तड़प उठे थे। पहले ख़लीफा की साहबज़ादी आयशा को जब इस अलमनाक वाक़ेए की ख़बर हुई तो वह बिलबिला के कह उठीं कि ''अगर मुआविया को कूफे वालों की बेदारी का थोड़ा सा भी एहसास होता तो वह ऐसा न करते।'' मगर जिगर ख़्वारा का फ़रज़न्द जानता था कि अरब से ''आदमी'' ख़त्म हो चुके हैं। ख़ुदा की क़सम हजर और उनके साथी अरब के सर और दिमाग की हैसियत रखते थे। दूसरे ख़लीफा के साहबज़ादे अब्दुल्लाह इब्ने उमर को जब हजर के क़त्ल का हाल मालूम हुआ तो वह दाढ़े मार मार कर रोने लगे। जब इन लोगों का यह हाल था तो इमाम हुसैन[अ०] पर इस वाक़ेए का कितना असर हुआ होगा? इसका हर इन्सान अन्दाज़ा कर सकता है।

इमाम[अ०] ने इस हादसे पर अपने रंज व अलम का इज़हार भी फरमाया जिसकी ख़बर अमीरे शाम मुआविया तक पहुँची और उनको डर हुआ कि कहीं इमाम[अ०] अपने जाँनिसारों को लेकर उनके ख़िलाफ खड़े न हो जाएं। इसलिए उन्होंने इमाम हुसैन[अ०] के नाम एक धमकी भरा ख़त भी लिखा। मुआविया के इस ख़त का हुसैन[अ०] ने जो तारीख़ी जवाब दिया है उसने बहुत सी हक़ीक़तों के चेहरों को बेनक़ाब कर दिया। इमाम[अ०] जानते थे कि उनके वालिद की ख़ामोशी से, जो इस्लाम के लिए उस वक़्त ज़रूरी थी, ग़लत फायदा उठाकर लोगों ने कह दिया था कि अली[अ०] अपने ज़माने के हाकिमों के मुख़ालिफ नहीं थे वरना वह सदा–ए–एहतेजाज क्यों न बुलन्द करते। इसलिए हुसैन[अ०] ने अपने इस ख़त में अमीरे शाम की उन तमाम ग़लतियों का ज़िक्र कर दिया जिनसे इस्लाम और अहकामे ख़ुदा और रसूल[स०] को चोट पहुँची थी। हुसैन[अ०] का यह ख़त मुआविया के ''आमाल नामे'' की हैसियत रखता है जिसमें अमीरे शाम को उनके तमाम करतूतों से आगाह कर दिया गया है।

इस ख़त में हुसैन[अ०] ने लिखा है कि:

''मैं अभी तुमसे जंग करने का कोई इरादा नहीं रखता और ख़ामोशी को गले लगाए हुए हूँ मगर मैं ख़ुद इस ख़ामोशी से ख़ुश नहीं हूँ और न यह ख़ामोशी तुम लोगों के लिए सनद बन सकती है।''

इमाम[अ०] का यह जुमला बताता है कि उनको एहसास था कि अमीरुलमोमिनीन[अ०] की ख़ामोशी को बातिल परस्तों ने सनद के तौर पर इस्तेमाल किया और हुसैन[अ०] नहीं चाहते थे कि बनी उमय्या के बदतर लोग उनकी ख़ामोशी को भी

सनद क़रार दे सकें और कह सकें कि ''हुसैन[अ0] को यज़ीद से इख़्तेलाफ थे, मुआविया से नहीं।''

आगे चलकर इमाम अ0 ने मुआविया के जर्मों की फेहरिस्त इस तरह पेश की हैः ''क्यों मुआविया! क्या तुम ही वह नहीं हो जिसने हजर इब्ने अदी को क़त्ल किया? क्या तुम ही वह नहीं हो जिसने ऐसे नमाज़ गुज़ारों और ख़ुदा परस्तों को क़त्ल किया जो ज़ुल्म व बिदअत को पसन्द नहीं करते थे?—— इमाम[अ0] ने इस तरह मुआविया पर यह वाज़ेह कर दिया कि बनी उमय्या ख़िलाफत ज़ुल्म, जौर और बिदअत की ख़िलाफत है जिसमें ख़ुदा परस्तों और हक़ व सदाक़त के परस्तारों के लिए रहम व करम की कोई गुन्जाईश नहीं। इसके बाद हुसैन[अ0] ने लिखा है किः —— ''ऐ मुआविया क्या तुम ही वह नहीं हो जिसने ज़ियाद इब्ने सुमैय्या को –जो बनी सक़ीफ के गुलाम अबीद राओी का लड़का था– अपना भाई और अपने बाप अबुसुफियान का बेटा क़रार दिया। हालांकि अल्लाह के रसूल[स0] ने फरमाया था कि बेटा उसका समझा जायगा जो औरत का असली शौहर है और ज़िनाकार के लिए तो बस पत्थर हैं और कुछ नहीं, मगर तुमने अल्लाह के रसूल[स0] के इस हुक्म को अपने मक़सद के लिए पीछे डाल दिया।'' हुसैन[अ0] के जुमले ने साबित कर दिया कि उनको अपनी नाइन्साफियों से ज़्यादा शरीअत में होने वाली तब्दीलियों का सदमा था — फिर इमाम[अ0] ने तहरीर फरमाया कि — ''वह तुम ही थे जिसने हुक्म दिया था कि जो अली[अ0] का पैरवी करने वाला हो उसे मार डालो''—— खत की आख़िरी लाइनों में इमाम हुसैन[अ0] ने निहायत साफगोई से काम लेते हुए बनी उमय्या के ज़ालिमों पर वाज़ेह कर दिया कि तुम्हारा यह ख़याल ग़लत है कि मैं तुम्हारे ख़िलाफ लोगों को उभार कर उम्मते मुहम्मदी के सफीने को फितना और फसाद की मौजों के थपेंड़ों में डाल रहा हूँ।'' इमाम[अ0] ने हक़ व सदाक़त के चेहरे पर से यह तहरीर फरमाकर नक़ाब खींच ली है किः

''इस उम्मत में तुम्हारी हुकूमत से बढ़कर कोई फितना नहीं है और मैं अपने नफ्स, अपने दीन और उम्मते मुहम्मदी के लिए किसी फायदे को इससे बढ़कर नहीं समझता कि मैं तुम्हारे ख़िलाफ खड़ा हो जाऊँ। अगर मैं ऐसा करूँ तो यह यक़ीनन कुर्बते इलाही का सबब होगा।''

इस ख़त ने साबित कर दिया कि इमाम[अ0] मदीने में मुतमइन नहीं थे। उनको हर लम्हा इसका एहसास था कि शामी हुकूमत ने इस्लाम को तबाही व बर्बादी के दहाने पर ला खड़ा किया है और इस सख़्त वक़्त में इस्लाम को हुसैन[अ0] की ज़रूरत है। मगर वह ख़ामोशी के साथ उस घड़ी का इन्तिज़ार कर रहे थे कि जब हसन[अ0] की आख़री बात भी मिटा दी जाए। तारीख़ इस ''फैसलाकुन'' मोड़ की तरफ़ आहिस्ता–आहिस्ता उस वक़्त से बढ़ने लगी जब मुआविया को अपने बेटे यज़ीद की ख़िलाफत मुसलमानों से मनवाने की धुन हुई ——

मुआविया ये बात अच्छी तरह जानते थे कि यज़ीद एक फासिक़ व फाजिर (झूठा और मक्कार) और बदकार जवान है जिसको मज़हब से दूर–दूर का लगाव नहीं —— वह यह भी जानते थे कि वह अपने इस मक़सद में पूरी तरह कामयाब नहीं हुए हैं कि अरब के आदमियों में ''इन्सानियत'' नाम की भी बाक़ी न रह जाए और इसलिए यज़ीद की ख़िलाफत के सामने मुसलमानों का सर झुका लेना रेगिस्तान में पानी तलाश करने से कम नहीं था। मगर वह अपने कुछ ''बुलन्द हिम्मत'' मददगारों को लेकर इस अहम काम के

लिए उठ खड़े हो गए।

इस मक़सद के हासिल करने के लिए हर वह चाल चली गई जो दुनिया में मौजूद था। कभी ताक़त के बल पर लोगों की पेशानियाँ झुका दी गईं, कभी दौलत के जादू से मुसलमानों के दीन व ईमान को ख़रीदा गया, कभी ख़िताबत की क़लाबाज़ियों से लोगों को क़ायल किया गया — मगर कुछ ऐसे मनचले और दुनिया के लालचियों की नज़रों में ''सर फिरे'' अल्लाह के बन्दे भी अरब के रेगिस्तानी माहौल में मौजूद थे जो न ताक़त से डरते थे, न पैसे से दबना और न जाहिलाना दलीलों से ख़ामोश होते थे।

अमीरे शाम को इन्हीं कुछ लोगों का सबसे ज़्यादा डर था। उनमें सबसे पहले हुसैन बिन अली[अ०] की ज़ात थी —— मुआविया जानते थे कि हुसैन[अ०] हक़ के अलावा किसी ताक़त से दबने वाले इन्सान नहीं हैं मगर फिर भी उन्होंने अपने ज़हन को मुतमइन करने के लिए वह तमाम हथियार इस्तेमाल किये जिनसे कोई भी इन्सान दब सकता है। कभी दौलत से लालच दिलाई गई, कभी ताक़त से डराया गया मगर सब बेकार — हुसैन[अ०] की ज़ात एक अटल पहाड़ थी जिसको अपनी जगह से हटा देना किसी के बस की बात नहीं थी ——

इस मौक़े पर इमाम हुसैन[अ०] ने हिक्मते अमली का वह बेमिसाल नमूना पेश किया जिसने साबित कर दिया कि दीनी रहनुमा सियासत के भी माहिर होते हैं............. हुसैन[अ०] यह जानते हुए कि सुल्हनामे की आख़िरी शर्त भी पैरों तले रौंदी जा रही है सख़्ती से काम नहीं लिया वरना दुनिया हुसैन[अ०] को जारेह क़रार देती। मुआविया भी अपने के तजुर्बे की बुनियाद पर इमाम के ख़िलाफ तश्द्दुद के इस्तेमाल से कतरा रहे थे और वह जानते थे कि अगर हुसैन जैसा रहनुमा उनके हाथ से ज़ाहिर बज़ाहिर शहीद हो गया तो इस्लामी दुनिया में उनकी रही सही साख भी ख़त्म हो जाएगी और मुसलमानों में एक ऐसा लावा फूट पड़ेगा जो बनी उमय्या ख़िलाफत को जला कर राख कर देगा। वह चाहते थे कि तशद्दुद का हरबा इस्तेमाल किये बग़ैर वह किसी तरह हुसैन[अ०] से यज़ीद की बैअत हासिल कर लें मगर उनकी यह तमन्ना दिल की दिल ही में रह गई यहाँ तक कि रजब 60 हि0 में मौत के फरिश्ते ने आकर उनको अपने पंजों में ले लिया।

मुआविया के मरते ही हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] के लिए वह दस साल से चला ''हौसला शिकन'' और ''सब्र आज़मा'' दौर ख़त्म हो गया जो इमाम हसन[अ०] की शहादत से शुरु हुआ था।

इन दस सालों में हुसैन[अ०] जिस ज़हनी और नफ्सियाती कशमकश में फंसे रहे वैसी इम्तिहानी कशमकश कर्बला के वाक़िअे के ज़ेल में भी हुसैन[अ०] को नहीं झेलना पड़ी। मगर यह हुसैनी किरदार था जिसने बातिल के तमाम मन्सूबों को उस दौर में भी ख़ाक में मिला दिया। अगर हुसैन[अ०] तशद्दुद पर तैयार हो जाते तो बनी उमय्या की माँगी मुराद पूरी हो जाती और फिर शायद वाक़िअ–ए–कर्बला जैसा इन्क़ेलाबी कारनामा दुनिया में सामने न आ सकता।

हुसैन[अ०] ने ख़ामोशी के साथ उस दौर में जिस तरह मुसलमानों की रहनुमाई की ज़िम्मेदारी को निभाया है वह सिर्फ हुसैन[अ०] और किसी हुसैन जेसे ही के बस की बात थी ——

हक़ीक़त में यह दस साल वाक़िअ–ए–कर्बला के मुक़द्दमे की हैसियत रखते हैं और हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] की ये ख़ामोशी फज़ा (माहौल) के उस सुकून की तरह है जो किसी आने वाले ग़ैरमामूली तूफान का पता देता है।

□□□